

उसे हैडेगर 'अभी-सत्य-नहीं' (not-yet-truth) नाम से अभिहित करता है। वह 'अभी-नहीं' (not-yet) ही असत्य है। सत्य प्रकट होने के बाद भी सम्पूर्ण सत्य मनुष्य के सामने सहसा प्रकट नहीं हो गया। अब भी सत्य प्रकट होता जा रहा है। इसलिए सत्य के साथ 'अभी-नहीं' वाला असत्य निरन्तर चला ही करता है। इस व्यापक संसार में जो सत्य है उसके पीछे असत्य भी बहुत बड़ी मात्रा में फैला हुआ है।

असत्य के दो रूप हो सकते हैं — एक तो रहस्य (mystery) और दूसरा त्रुटि (erring)। जो सत्य अभी हमारे सामने अप्रकट है वह रहस्य कहा जायेगा। जब वस्तु को अपने वास्तविक रूप में न समझ कर अन्य प्रकार से समझते हुए भी सत्य मान लिया जाता है तो उसे त्रुटि कहेंगे। हैडेगर का कहना है कि 'रहस्य का शासन होता है और त्रुटि कष्ट कारक होती है और मनुष्य अपने डायोन के अस्तित्व या अभिव्यक्ति में दोनों से प्रभावित होता है।'¹

'न-कुछ' की अवधारणा

हैडेगर के दार्शनिक चिन्तन में 'न-कुछ' की अवधारणा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। उसने 'ह्वाट इज मेटाफिजिक्स' (What is Metaphysics) नामक लेख में इस पर विचार किया है। यह लेख भाषण के लिए तैयार किया गया था। इसलिये इसमें उतनी जटिल विवेचना नहीं है जितनी हैडेगर के अन्य लेखों में है। 'न-कुछ' की अवधारणा परमसत् की अवधारणा से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। परमसत् की समस्या पर जब चर्चा चलती है तो प्रायः बहुत कम समझ में आती है। परमसत् पृथ्वी, तारे, पशु या मनुष्य जैसे किसी सत् के समान तो है नहीं वह तो जो कुछ है उस सब में है। हम जो कुछ है उस सब के बीच रहने के कारण किसी न किसी प्रकार के सत् के विषय में व्यावहारिक रूप से विचार करते हैं किन्तु इस सब का अतिक्रमण करके परमसत् तक नहीं पहुँच पाते हैं। तत्त्वशास्त्र में हम इसका अतिक्रमण करके इसके पार जाने का प्रयत्न करते हैं। हीगेल के विचार से सामान्य दृष्टि में तत्त्वशास्त्र एक प्रकार से उलटा हुआ संसार (the world turned upside down) है। हैडेगर इस बात का उल्लेख करते हुए तत्त्वशास्त्र के अन्तर्गत सत् का विवेचन स्वीकार करता है। परमसत् तत्त्वशास्त्र

1. "The mystery rules and the erring oppresses; and man, in the Ex-sistence of his Dasein, is subject to both of them."

का भी आधार है। परमसत् तक पहुँचने के लिए 'न-कुछ' की समस्या का सामना करना आवश्यक है। साथ ही यदि परमसत् की समस्या पर दार्शनिक चिन्तन नहीं किया जाता है तो 'न-कुछ' का अर्थ यही समझा जाता है कि जहाँ सब वस्तुओं का अभाव हो उसे 'न-कुछ' कहना चाहिए। किन्तु यदि परमसत् की तत्त्वशास्त्रीय समस्या पर उचित ढंग से विचार किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि परमसत् के साथ 'न-कुछ' की समस्या भी जुड़ी हुई है। इसलिए हैडेगर हीगेल की इस बात को स्वीकार कर लेता है कि शुद्ध परमसत् और शुद्ध 'न-कुछ' एक ही हैं।

'न-कुछ' पर विचार करने से पूर्व इस बात की समझ लेना चाहिए कि हैडेगर के मतानुसार मनुष्य की स्थिति सम्पूर्ण के भीतर अनेक वस्तुओं के बीच है। यह बात तो स्पष्ट है कि मनुष्य अनेक वस्तुओं के बीच विद्यमान है किन्तु समझने की बात यह है कि ये अनेक वस्तुयें सम्पूर्ण के अन्तर्गत कैसे हैं। 'सम्पूर्ण के अन्तर्गत' बात केवल कल्पना नहीं है। हम व्यावहारिक जीवन में निरव्य सम्पूर्ण का भी अनुभव करते हैं। विशेष रूप से उकतापन (boredom) में या प्रसन्नता में सम्पूर्ण का अनुभव होता है। जब किसी विशेष वस्तु से नहीं उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण संसार मिलकर जो में उकताहट उत्पन्न कर देता है। हमारे आसपास की सब वस्तुओं के पीछे पृष्ठभूमि में सम्पूर्ण विद्यमान रहता है। बड़ी आगे बढ़कर उकताहट पैदा करता है। उकताहट में सम्पूर्ण का अनुभव जितना स्पष्ट होता है उतना और किसी मनःस्थिति में नहीं। किसी प्रिय-पात्र की उपस्थिति में जो प्रसन्नता होती है उसमें भी सम्पूर्ण का अनुभव होता है किन्तु उतना स्पष्ट नहीं।

यह सम्पूर्ण ही मनुष्य के हृदय में त्रास उत्पन्न करता है। त्रास में वह 'न-कुछ' का अनुभव करता है। यह अनुभव इतना अधिक स्पष्ट होता है कि उस पर अधिक कुछ कहना आवश्यक नहीं है। त्रास में 'न-कुछ' के अनुभव की खोज हैडेगर की मौलिकता 'न-कुछ' का महत्त्व स्पष्ट करने में है। वह 'न-कुछ' पर ऐसे विचार करता है मानो वह कोई वस्तु हो; यद्यपि वह स्पष्ट कह देता है कि यह ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो हो।

त्रास की स्थिति में वस्तुयें खिसकती प्रतीत होती हैं, उन पर से हमारा अधिकार कम होता जाता है। यह 'न-कुछ' के प्रभाव के कारण ही होता है। 'न-कुछ' संसार की वस्तुओं के साथ हो है, फिर भी इसके प्रभाव में वस्तुओं का रूप बदल जाता है। इसके अतिरिक्त 'न-कुछ' विकर्षण (retreat) और संकोच भी उत्पन्न करता है। यद्यपि आँखों के सामने वस्तुयें रहती हैं किन्तु उनकी ओर

1. Pure Being and pure Nothing are the same.

ध्यान नहीं रहता है। 'न-कुछ' अपनी ओर आकर्षित नहीं करता है। वह केवल विकर्षण उत्पन्न करता है। लेकिन इस बात का ध्यान रहता है कि वस्तुएँ अपना रूप बदल रही हैं और पीछे हटती जाती हैं। मनुष्य स्पष्ट समझने लगता है कि 'न-कुछ' उसके चारों ओर छा गया है। इस प्रकार वस्तुओं का अतिक्रमण करने पर वस्तुओं की पृष्ठभूमि में व्याप्त 'न-कुछ' तक पहुँचा जा सकता है। परमसत् भी वस्तुओं के अतिक्रमण करने पर प्राप्त होता है। यही कारण है कि परमसत् और 'न-कुछ' एक साथ रहते हैं और उत्पत्ति-विधि से प्राप्त होते हैं।

वस्तुओं के परे जा कर 'न-कुछ' का अनुभव होता है। उसके उपरान्त जब वस्तुएँ प्रकट होती हैं तो उनका रूप ही भिन्न होता है। वे अन्यथा प्रतीत होती हैं। 'न-कुछ' की पृष्ठभूमि में ज्ञान और आश्चर्य है। उसके परिपेक्ष्य में देखने से संसार की वस्तुएँ अपने वास्तविक रूप में दिखाई देने लगती हैं।

'न-कुछ' न तो निषेध है और न शून्य। निषेध 'न-कुछ' का ही एक रूप है। 'नहीं' की उत्पत्ति निषेध से नहीं हो सकती है। निषेध करने के लिए पहले कोई वस्तु ही होनी चाहिए। 'नहीं' जैसी कोई वस्तु तभी प्राप्त हो सकती है जबकि पहले से 'नहीं' उपस्थित हो। हैडेगर का तर्क है कि निषेध का आधार 'नहीं' है। 'नहीं' पहले होना चाहिए, तभी उससे निषेध की उत्पत्ति हो सकती है। इसके विपरीत निषेध से 'नहीं' की उत्पत्ति असम्भव है।

'न-कुछ' का विवेचन तत्व-मीमांसा का विषय है। तत्व-मीमांसा की परिभाषा करते हुए हैडेगर कहता है कि जो वस्तुएँ हैं उनके परे जाकर प्रश्न करना तत्व-मीमांसा है। ऐसा करने से वस्तुओं की यथायंता और सम्पूर्णता भली भाँति प्रकट हो जाती है। परम्परागत भाषा में इसे अतिक्रमण (transcendence) कहते आ रहे हैं। तत्व-मीमांसा के बिना सारा ज्ञान जड़, स्थिर और केवल प्रश्नों का संग्रह मात्र रह जायेगा। तत्व-मीमांसा का सब से पहला प्रश्न "जो कुछ है उसका परमसत् क्या है" से प्रारम्भ होता है। इस प्रश्न से मनुष्य खुले मैदान में आया और उसने अपनी सम्भ्यता और इतिहास को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इसलिए इस प्रश्न पर हर युग में प्रबुद्ध चिन्तक विचार करता रहता है।

'ह्याट इज़ मॉटाफिजिक्स' लेख में हैडेगर ने कुछ पंक्तियाँ बाद में जोड़ दी थीं। उसमें उसने दर्शन और विज्ञान का अन्तर स्पष्ट किया है। दर्शन में जिन तथ्यों और समस्याओं पर विचार किया जाता है वे वस्तुगत नहीं हो सकती हैं। विज्ञान की वस्तुओं का तटस्थ भाव से वस्तुगत विवेचन हो सकता है। दार्शनिक

वही सत् है। तत्व-मीमांसा इस दृष्टि को परमसत् (Being) का प्रकाश मानती है। यह प्रकाश स्वयं तत्व-मीमांसा के क्षेत्र में नहीं आता है। कारण यह है कि तत्व-मीमांसा सतों को ही सतों के रूप में प्रस्तुत करती है। फिर भी उनका कार्य प्रकाश देने वाले सत् की खोज करना है।

सतों की व्याख्या चाहे जिस प्रकार की जाये परमसत् के प्रकाश में वे सत् ही दिखाई देने हैं। अध्यात्मवाद में उसे आत्मा (spirit), भौतिकवाद में उसे पुद्गल और ऊर्जा अथवा अन्य प्रकार से उसे सम्पत्ति (becoming), जीवन, प्रत्यय, इच्छा, तत्व, आत्मा या शक्ति (energeia) भी कहा जाता है किन्तु तत्व-मीमांसा की व्याख्या में वह परमसत् के प्रकाश रूप में उपस्थित होता है। परमसत् यहाँ प्रकट अवस्था में प्रस्तुत है। हैडेगर का विचार है कि जब तत्व-मीमांसा सतों की व्याख्या करती है तो वह अनजाने ही परमसत् की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालने लगती है। अतः दर्शन की जड़ों के रूप में तत्व-मीमांसा छाई हुई है और उसी से उसे भोजन मिलता है। हैडेगर के इस विवेचन से स्पष्ट है कि वह परम्परागत तत्व-मीमांसा से आगे बढ़कर परमसत् तक पहुँचना चाहता है। वह परमसत् अन्य सतों का मूल-उद्गम है।

परमसत् पर विचार करने में, हैडेगर समझता है कि वह तत्व-मीमांसा से आगे निकल गया है। वह तत्व-मीमांसा के क्षेत्र में नहीं आता है। तत्व-मीमांसा दर्शन की जड़ है। परमसत् वह भूमि है जिसमें तत्व-मीमांसा की जड़ जमी हुई है इसलिए परमसत् तत्व-मीमांसा से अलग होना ही चाहिए। फिर भी परमसत् ही तत्व-मीमांसा में घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि तत्व-मीमांसा परमसत् में समाई ही हुई है। दर्शन के वृक्ष को खुराक पहुँचाने के लिए तत्व-मीमांसा दर्शन को ऊपर छोड़कर परमसत् के भीतर प्रविष्ट होकर अपने को उसी में लो देती है। परमसत् और तत्व-मीमांसा में यह सम्बन्ध होने के कारण हैडेगर कहता है कि परमसत् पर विचार करने से तत्व-मीमांसा की कोई हानि नहीं होती है बल्कि भूमि की जुलाई - गुड़ाई होने से जैसे जड़ों को अधिक खुराक मिलती है वैसे ही परमसत् पर विचार करने से तत्व-मीमांसा और दर्शन अधिक परिपुष्ट होते हैं।

1. "The truth of Being may thus be called the ground in which metaphysics, as the root of the tree of philosophy is kept and from which it is nourished."

—Existentialism from Dostoevsky to Sartre, p. 208

२. वही, पृ० २०९।

परमसत् का महान चिन्तन करने से तत्व-मीमांसा की बल मिलता है, उसमें परिवर्तन आता है, और साथ ही उसका चिन्तन करने वाले मनुष्य में भी परिवर्तन होता है। काण्ट ने कहा था कि मनुष्य जहाँ तक अपने को चिन्तनशील प्राणी समझता है तत्व-मीमांसा का सम्बन्ध मनुष्य की प्रकृति से ही होता है। यदि हमारा चिन्तन तत्व-मीमांसा के आधार तक पहुँच सके तो निश्चय ही मानव-प्रकृति में परिवर्तन आ सकेगा और उसके साथ ही तत्व-मीमांसा भी बदल जायेगी। परमसत् की खोज और उसके चिन्तन से मनुष्य की प्रकृति बदली जा सकती है। इसी उद्देश्य से हैडेगर तत्व-मीमांसा का आधार खोजने में प्रवृत्त होता है। उसका उद्देश्य न तो दर्शन को अधिक महारा आधार प्रदान करना है, न दर्शन-पद्धति को बदलना है और न यह सिद्ध करना है कि दर्शन की नींव अभी दृढ़ नहीं है। उसकी दृष्टि में ये कार्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। वह तो यह देखना चाहता है कि परमसत् का प्रकाश मनुष्य की प्रकृति पर क्या पड़ता है ?

परमसत् की खोज

जब प्रश्न यह है कि परमसत् कैसे जाना जा सकता है ? उसे पाने का साधन मनुष्य के पास क्या है ? अर्स्ट ब्रीसक (Ernst Breisach) का कथन है कि हैडेगर का परमसत् भारतीय दर्शन में वर्णित आत्मा जैसा नहीं है। आत्मा विभू है और सारा दृश्यजगत् आत्मक माया का आवरण है। अन्तर्दृष्टि के द्वारा इस आवरण को भेद कर, मुख्यतः संसार की हर वस्तु को आन्तरिक रूप से मिथ्या समझकर ही सत्य प्राप्त किया जा सकता है। हैडेगर की दृष्टि में परमसत् और सत् के संयोग से दो में से किसी की हानि नहीं होती है। सम्भवतः ब्रीसक का भारतीय दर्शन में वर्णित आत्मा से तात्पर्य अद्वैत वेदान्त के ब्रह्मस्वरूप आत्मा से है। आत्मा शाश्वत है किन्तु उसकी तुलना में संसार नश्वर और क्षणिक है। हैडेगर संकर की भाँति संसार को मिथ्या मानने को कदापि तैयार नहीं है। वह तो केवल इतना कहता है कि मनुष्य संसार की बातों में पड़कर परमसत् को भूल जाता है और उससे दूर हो जाता है। इस प्रकार गलती में पड़कर मनुष्य बेचर हो जाता है।

परमसत् का इतना महत्व होने के कारण हैडेगर उसे प्राप्त करने का मार्ग निर्देश करता है। वह कहता है कि मनुष्य स्वयं ऐसा द्वार है जहाँ से होकर परमसत् तक पहुँचा जा सकता है। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप और उसकी विशेषताओं पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं। मनुष्य ही केवल अस्तित्ववान प्राणी है। वह परमसत् के प्रकाश में निकल कर खड़ा हो सकता है। यही उसके अस्तित्व का लक्षण

है। अन्य वस्तुओं या प्राणियों में यह क्षमता नहीं है। इसीलिए मनुष्य परमसत् का द्वार कहा गया है।

नीतिशास्त्र

हैडेगर ने नीतिशास्त्र पर स्वतन्त्र रूप से कुछ नहीं लिखा है। इसका महत्वपूर्ण कारण है। नैतिकता के नियमों की रचना करना अथवा नैतिक नियमों का सुदृढ़ आधार खोजना उसे आवश्यक नहीं प्रतीत होता। कारण यह है कि हैडेगर की दृष्टि में मनुष्य के जीवन का परमलक्ष्य अपना प्रामाणिक अस्तित्व प्राप्त करना है। उसे इस प्रकार रहना चाहिए और व्यवहार करना चाहिए कि परमसत् की चेतना उसे सदा बनी रहे। वह यह समझे कि वह परमसत् के प्रकाश में विचार और कार्य कर रहा है। इसी को हैडेगर का नैतिक महावाक्य कहा जा सकता है। इसी प्रकार रहने में मनुष्य का प्रामाणिक अस्तित्व सुरक्षित रहता है। वह पाप-पुण्य के ऊपर की स्थिति है। इसमें किसी नैतिक नियम द्वारा मार्ग-प्रदर्शन अपेक्षित नहीं है। वे तो ऊपरी सतह की बातें हैं। प्रामाणिक अस्तित्व का सिद्धांत बड़ी गहराई में बँटा हुआ है। उसे समझ लेने पर नैतिक नियमों के विस्तार की कोई आवश्यकता नहीं।

धर्म और ईश्वर

धर्म के विषय में हैडेगर के विचार बहुत विवादास्पद हैं। उन पर बहुत सतर्कतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। ध्यान देने की बात है कि हैडेगर ने अपना प्रारम्भिक जीवन ईसाई धर्म के अध्ययन में लगाया था। वह कैथोलिक प्रोस्ट भी रहा था। किन्तु यह कहना कठिन है कि ईसाई धर्म के विषय में उसके क्या विचार हैं। उसकी रचनाओं में कहीं-कहीं 'न' और कहीं-कहीं 'हाँ' के रूप में उत्तर मिलते हैं। उसके नकारात्मक विचारों से यह न समझना चाहिए कि वह ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। उसने यह तो अवश्य कहा है कि ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने वाले प्राचीन तर्कों उसे कभी सन्तुष्ट न कर सके। तर्कों द्वारा ईश्वर भले ही न सिद्ध किया जा सके फिर भी उसके अस्तित्व की अनुभूति मनुष्य को हो सकती है। इसीलिए यह न समझना चाहिए कि हैडेगर ईश्वर का अस्तित्व मानता ही नहीं है। वह अपनी रचनाओं में 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग भी नहीं करता है।

हैडेगर अपने दर्शन को इस संसार से सम्बन्धित रखना चाहता है। इसलिए वह प्रकृति के परे किसी ईश्वर जैसी शक्ति की अपेक्षा रखना आवश्यक नहीं समझता है। डार्वेन के विश्लेषण में भी वह ईश्वर को नहीं लाना चाहता है। वह ईश्वर के वस्तुगत चिन्तन के पक्ष में भी नहीं है। ऐसा करने से तो ईश्वर संसार की अन्य